Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

झारखंड लोक सेवा आयोग (JPSC)

हिन्दी भाषा एवं इसका इतिहास

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: JHM01

झारखंड लोक सेवा आयोग (JPSC)

हिन्दी भाषा एवं इसका इतिहास

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 8750187501, 011-47532596
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

JPSC DLP विषय सूची (Contents)

1. हिन्दी भाषा का परिचय		**7-16**
1.1	हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था	7
1.2	हिन्दी की शब्द व्यवस्था तथा शब्द-संपदा	9
2. हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास		**17-18**
2.1	आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास	17
2.2	हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास	17
3. अपभ्रंश		**19-24**
3.1	अपभ्रंश: भाषा या भाषिक विकास की स्थिति	19
3.2	अपभ्रंश की भाषा संबंधी विशेषताएँ	19
3.3	अपभ्रंश के भेद	23
4. अवहट्ट		**25-28**
5. पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी		**29-32**
6. खड़ी बोली		**33-48**
6.1	खड़ी बोली का नामकरण	33
6.2	19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास	33
6.3	19वीं सदी में खड़ी बोली के तीव्र विकास के कारण	37
6.4	उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का साहित्यिक स्वरूप	40
6.5	20वीं शताब्दी में पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास	43
6.6	गद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास	46
7. भाषा, परिवार व उसका वर्गीकरण		**49-80**
7.1	भाषा और बोली में अंतर	49
7.2	काव्यभाषा तथा बोली में अंतर्संबंध	50
7.3	हिन्दी भाषा का क्षेत्र	51

7.4	हिन्दी की उपभाषाएँ व बोलियाँ	51
7.5	दक्खिनी हिन्दी	60
7.6	पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी का अन्तर	66
7.7	हिन्दी के विकास में प्रमुख बोलियों का योगदान	69
7.8	हिन्दी और उसकी बोलियों का संबंध	73
7.9	हिन्दी की बोलियों को भाषा का दर्जा दिए जाने का मुद्दा	75
8.	**देवनागरी लिपि**	**81-86**
8.1	'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व	81
8.2	भाषा व लिपि का अंत:संबंध एवं अन्तर	81
8.3	देवनागरी लिपि का उद्‌भव	82
8.4	देवनागरी लिपि का नामकरण	82
8.5	मानक या आदर्श लिपि की विशेषताएँ	83
8.6	'देवनागरी लिपि' की विशेषताएँ/वैज्ञानिकता	83
8.7	देवनागरी लिपि की सीमाएँ	85
9.	**मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना**	**87-103**
9.1	हिन्दी की पद संरचना	87
9.2	हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था	87
9.3	हिन्दी की सर्वनाम व्यवस्था	88
9.4	हिन्दी की विशेषण व्यवस्था	90
9.5	हिन्दी की क्रिया व्यवस्था	91
9.6	हिन्दी की कारक व्यवस्था	94
9.7	विकारोत्पादक तत्त्व	96
9.8	हिन्दी की लिंग व्यवस्था	97
9.9	हिन्दी की वचन संरचना	98
9.10	हिन्दी की वाक्य संरचना	100

10. राष्ट्रभाषा हिन्दी **104-119**

10.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ 104

10.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क 104

10.3 राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की ऐतिहासिक विकास-यात्रा 105

10.4 स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास (संक्षिप्त चर्चा) 107

10.5 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में विभिन्न नेताओं का योगदान 109

10.6 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में प्रमुख संस्थाओं का योगदान 112

10.7 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में दक्षिण भारतीय राज्यों का योगदान 115

10.8 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास हेतु सुझाव 117

10.9 भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्रभाषा की धारणा की प्रासंगिकता 117

10.10 हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध/क्या हिन्दी को महत्त्व देना भाषायी साम्राज्यवाद है? 118

10.11 त्रिभाषा सूत्र 118

11. राजभाषा हिन्दी **120-128**

11.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति 120

11.2 राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की प्रगति 121

11.3 राजभाषा हिन्दी की प्रगति की समीक्षा 124

11.4 राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के सुझाव 126

11.5 संपर्क भाषा 127

12. प्रयोजनमूलक हिन्दी **129-135**

12.1 प्रस्तावना 129

12.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता 129

12.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी बनाम व्यावहारिक हिन्दी 130

12.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी : स्वरूप और व्याख्या 130

12.5 प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयोग के क्षेत्र 131

12.6 प्रयोजनमूलक हिन्दी : सीमाएँ और संभावनाएँ 134

13. काव्यशास्त्र **136-162**

13.1 काव्य की परिभाषा 136

13.2 काव्य हेतु 136

13.3 काव्य के प्रकार एवं काव्य प्रयोजन 139

13.4 काव्य के लक्षण 145

13.5 साधारणीकरण की अवधारणा 147

13.6 रस 151

13.7 छंद 154

13.8 अलंकार 158

अध्याय
1

हिन्दी भाषा का परिचय

किसी भी भाषा का अध्ययन चार इकाइयों के स्तर पर किया जा सकता है-

1. ध्वनि व्यवस्था 2. शब्द व्यवस्था 3. व्याकरणिक संरचना 4. लिपि व वर्तनी

1.1 हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था

हिन्दी भाषा में कुल 59 ध्वनियाँ स्वीकार की गई हैं। इस दृष्टि से हिन्दी दुनिया की सर्वाधिक समृद्ध भाषाओं में से एक है। विश्व की सभी भाषाओं में प्रचलित प्रायः सभी ध्वनियाँ इसमें विद्यमान हैं।

इन ध्वनियों को मूल रूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

(क) स्वर (ख) व्यंजन (ग) अयोगवाह ध्वनियाँ

(क) स्वर

स्वर उस ध्वनि को कहते हैं जिसका उच्चारण बिना किसी अन्य ध्वनि की सहायता के होता है। हिन्दी भाषा में बारह स्वर हैं जिन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(अ) **मूल स्वर** अर्थात् वे स्वर जिनका कोई विभाजन नहीं हो सकता। ये संख्या में चार हैं- अ, इ, उ, ऋ।

(आ) **दीर्घ स्वर** अर्थात् एक ही मूल स्वर के दो बार जुड़ने से बनने वाले स्वर। ये भी संख्या में चार हैं-

आ (अ + अ) ऊ (उ + उ) ई (इ + इ) ॠ (ऋ + ऋ)

(इ) **संयुक्त स्वर** अर्थात् वे दीर्घ स्वर जो दो अलग-अलग स्वरों से मिलकर बने हों। ये भी संख्या में चार हैं-

ए (अ + इ) ओ (अ + उ) ऐ (अ + ए) औ (अ + ओ)

(ख) व्यंजन

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के लिए किसी अन्य ध्वनि (स्वर) की सहायता लेनी पड़ती है। स्वर के बिना व्यंजन पूर्ण नहीं होते। हिन्दी में कुल 45 व्यंजन हैं जिनका कई आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है-

1. अवरोध के आधार पर व्यंजनों के भेद

इस आधार पर व्यंजनों के तीन भेद किये जाते हैं- **अंतस्थ, ऊष्म** व **स्पर्श।**

(अ) अंतस्थ व्यंजनः ये वे व्यंजन हैं जिनका उच्चारण स्वर और व्यंजन का मध्यवर्ती होता है। इन व्यंजनों में श्वास का अवरोध बहुत कम होता है। ऐसे व्यंजन चार हैं- **य, र, ल, व।** य और व में यह प्रवृत्ति अधिक है। इस विशेष योग्यता के कारण इन दोनों को **'अर्द्धस्वर'** भी कहा जाता है।

(आ) ऊष्म या संघर्षी व्यंजनः ये वे व्यंजन हैं जिनके उच्चारण में विशेष रूप से श्वास का घर्षण होता है। वस्तुतः, जीभ तथा होठों के निकट आने के कारण इनके उच्चारण में वायु रगड़ खाती हुई बाहर निकलती है व इसी से संघर्ष/घर्षण होता है। ये संख्या में चार हैं- **श, ष, स, ह।**

(इ) स्पर्श व्यंजनः ये वे व्यंजन हैं जिनके उच्चारण में जीभ या निचला होठ उच्चारण स्थान का स्पर्श करके वायु को रोकता है। इन व्यंजनों को उच्चारण स्थान के आधार पर पाँच वर्गों में पाँच-पाँच की संख्या में बाँटा गया है-

क वर्ग : क ख ग घ ङ
च वर्ग : च छ ज झ ञ
ट वर्ग : ट ठ ड ढ ण
त वर्ग : त थ द ध न
प वर्ग : प फ ब भ म

(ग) संधि और समास

ये भाषा की वे युक्तियाँ हैं जिनमें अलग-अलग शब्द या शब्दांश आपस में जुड़कर एक नए शब्द का निर्माण करते हैं। समास का संयोग दो शब्दों के परस्पर जुड़ने से ही होता है जबकि संधि एक शब्द व दूसरे शब्दांश के बीच भी हो सकती है। अभी तक के उदाहरणों में कई बार संधियों के उदाहरण हमने देखे हैं, जैसे निर् + आकार = निराकार तथा सत् + जन = सज्जन आदि। अब हम समास के संबंध में विशेष चर्चा करेंगे।

हिन्दी में प्रमुख रूप से चार प्रकार के समास स्वीकार किए गए हैं- अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वंद्व तथा बहुब्रीहि समास। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है-

1. **अव्ययीभाव समासः** यह वह समास है जिसमें पूर्व पद प्रधान हो व उत्तर पद गौण हो, जैसे प्रतिदिन।
2. **तत्पुरुष समासः** यह वह समास है जिसमें उत्तर पद प्रधान हो और पूर्व पद गौण हो जैसे घुड़सवार, हस्तलिखित इत्यादि। तत्पुरुष समास के दो उपभेद माने गए हैं- कर्मधार्य समास तथा द्विगु समास। ध्यातव्य है कि कुछ तत्पुरुष समास ऐसे भी हो सकते हैं जो इन दोनों में शामिल न होते हों। इन दोनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-
   (अ) **कर्मधारयः** वह समास जिसमें पूर्व पद विशेषण तथा उत्तर पद विशेष्य हो, जैसे : नीलगाय।
   (आ) **द्विगुः** वह समास जिसमें पूर्व पद कोई संख्या हो तथा वह उत्तर पद की व्याख्या करती हो, जैसे चतुर्भुज, चौराहा, अष्टावक्र, सतसई इत्यादि।
3. **द्वंद्व समासः** यह वह समास है जिसमें पूर्व पद तथा उत्तर पद बराबर महत्त्व के हों, जैसे दाल-रोटी, माता-पिता, ज्वार-भाटा, हेरा-फेरी इत्यादि।
4. **बहुब्रीहि समासः** यह वह समास है जिसमें दोनों शब्द मिलकर किसी तीसरे अर्थ की व्यंजना करें। योगरूढ़ शब्द ही एक प्रकार से बहुब्रीहि समास कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर 'दशानन' शब्द दो शब्दों दश + आनन से मिलकर बना है पर इसका अर्थ 'रावण' इन दोनों से भिन्न एक अन्य अर्थ है। ऐसे ही नीलांबर, चक्रपाणि इत्यादि भी इसी समास के उदाहरण हैं।

3. पद संरचना

आमतौर पर शब्द व पद को पर्यायवाची माना जाता है पर इनमें एक अंतर है। शब्द स्वयं में स्वतंत्र भी हो सकता है किंतु वही शब्द जब व्याकरण सम्मत नियमों के आधार पर किसी वाक्य में निश्चित स्थान ग्रहण कर लेता है तो पद बन जाता है, जैसे- 'राम', 'ने', 'रावण', 'को', 'मारा' ये सभी शब्द हैं किंतु 'राम ने रावण को मारा' वाक्य में ये पाँचों पद बन गए हैं। जब तक ये शब्द थे, हम इनका स्थान परिवर्तन कर सकते थे पर अब स्थान परिवर्तन करने से अर्थ के परिवर्तित होने की संभावना हो जाएगी।

हिन्दी में पदों का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है- विकारी पद तथा अविकारी पद या अव्यय। यह वर्गीकरण ठीक वही है जो हमने परिवर्तनीयता की दृष्टि से शब्दों के अंतर्गत पढ़ा था। विकारी शब्दों को ही विकारी पद कहा जाता है और अविकारी शब्दों को अविकारी पद।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए, उसकी उपयोगिता बताएँ। **6th JPSC (Mians)**
2. हिन्दी भाषा के ध्वनि व्यवस्था में स्वर और व्यजन से आप क्या समझते है?
3. आयोगवाह ध्वनियों से आपका क्या आशय है?
4. 'तत्सम' शब्द से आप क्या समझते है?
5. 'देशज' और 'विदेशज' शब्द से आप क्या समझते हैं?
6. प्रयोग के संदर्भ की दृष्टि से से शब्द के कितने प्रकार होते है? उदाहरण सहित बताएँ

अध्याय
2

हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास आर्यों की मूल भाषा संस्कृत से हुआ है। भारतीय तथा बाहरी क्षेत्रों में आर्य भाषाओं का विकास अलग-अलग पद्धति पर हुआ है।

2.1 आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास

भारतीय आर्यभाषा के विकास को प्राय: तीन चरणों में विभक्त किया जाता है-

1. प्राचीन आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 2000 ई. पू. से 500 ई. पू. तक माना गया है। इसके अन्तर्गत दो स्थितियाँ शामिल हैं- **वैदिक संस्कृत** (2000 से 1000 ई. पू.) तथा **लौकिक संस्कृत** (1000 से 500 ई. पू.)।

2. मध्यकालीन आर्यभाषाएँ

इनका काल 500 ई. पू. से 1000 ई. तक स्वीकार किया गया है। इस भाग के अन्तर्गत चार चरण मिलते हैं- **पालि** (500 ई. पू. से ईस्वी सन् के आरंभ तक), **प्राकृत** (ईस्वी सन् के आरंभ से 500 ई. तक) और **अपभ्रंश** तथा **अवहट्ट** (500 ई. से 1100 ई. तक)।

3. आधुनिक आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 1100 ईस्वी से अभी तक माना जाता है। इनमें हिन्दी, बांग्ला, उड़िया, असमी, मराठी, गुजराती, पंजाबी तथा सिन्धी जैसी भाषाएँ शामिल हैं।

2.2 हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास मूलत: प्राचीन आर्यभाषा संस्कृत से हुआ है। संस्कृत और हिन्दी के संपर्क सूत्र को स्थापित करने वाली भाषिक स्थितियों को हम मध्यकालीन आर्यभाषाएँ कहते हैं। अत: हिन्दी के विकास का अध्ययन मध्यकालीन आर्यभाषाओं से आरंभ करना उचित प्रतीत होता है।

हिन्दी का उद्भव कब हुआ, इस पर भाषाविज्ञानियों में गंभीर मतभेद है। कुछ का दावा है कि अपभ्रंश के विकास से ही हिन्दी का विकास मान लेना चाहिए तो दूसरे छोर पर कुछ अन्य का मत है कि पुरानी हिन्दी के विकास से पहले की स्थितियों को अपभ्रंश और अवहट्ट के रूप में स्वतंत्र माना जाना चाहिए और हिन्दी की शुरुआत पुरानी या प्रारंभिक हिन्दी से मानी जानी चाहिए।

वर्तमान भाषा विज्ञान में सामान्यत: पुरानी हिन्दी से ही हिन्दी की शुरुआत माने जाने का प्रचलन है। इसका अर्थ है कि हिन्दी का आरंभ लगभग 1100 ईस्वी में हो गया था। किंतु, यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि तब से आज तक की विकास यात्रा कई अलग-अलग प्रवृत्तियों पर आधारित है। इस कारण हिन्दी के विकास को भी तीन चरणों में बाँटा जाता है-

1. प्राचीन हिन्दी (1100 ई. से 1350 ई. लगभग)
2. मध्यकालीन हिन्दी (1350 ई. से 1850 ई. लगभग)
3. आधुनिक हिन्दी (1850 ई. से अभी तक)

अध्याय
3

अपभ्रंश

अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट भाषा। व्याडि, पतंजलि, हेमचन्द्र और दण्डी आदि प्रमुख भाषाशास्त्रियों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि जिस भाषा के शब्द संस्कृत के मानक शब्दों से विकृत हुए हों, उसे ही भ्रष्ट भाषा या अपभ्रंश कहा जाता है। कालक्रम की दृष्टि से अपभ्रंश मध्यकालीन आर्यभाषाओं की तीसरी और अंतिम अवस्था का नाम है। इसका समय पालि, प्राकृत के बाद लगभग पाँच सौ ईस्वी में आरंभ होता है तथा लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में यह पुरानी हिन्दी में पर्यवसित हो जाती है। पुरानी हिन्दी से आधुनिक आर्यभाषा का आरम्भ माना गया है।

अपभ्रंश के अध्ययन के स्रोत

अपभ्रंश की पहचान के लिए आधुनिक भाषा विज्ञान के पास कई स्रोत उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ शिलालेखों के रूप में हैं और कुछ साहित्यिक रचनाओं के रूप में। आठवीं शताब्दी में सिद्ध साहित्य के विकास में पूर्वी प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। बाद के समय में बौद्ध, रासो तथा विशेषकर जैन साहित्य की रचनाओं में अपभ्रंश के प्रयोग के उदाहरण दिखायी देते हैं। इनमें "महापुराण", "जसहर चरिउ", "णायकुमार चरिउ", "जिनदत्त कहा", "भविस्यत कहा", "पाहुड़ दोहा" आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। कालिदास के नाटकों में भी निम्नवर्ग के पात्र इसी भाषा का प्रयोग करते हैं।

3.1 अपभ्रंशः भाषा या भाषिक विकास की स्थिति

अपभ्रंश के सम्बन्ध में एक अन्य विवाद यह भी है कि यह अपने आप में एक विशेष 'भाषा' है या भाषिक विकास की एक 'स्थिति'? इन दोनों में अन्तर यह है कि यदि यह भाषा है तो एक निश्चित समय और स्थान में इसका विकास दिखना चाहिए और यदि यह भाषिक विकास की 'स्थिति' है तो हिन्दी क्षेत्र की प्रत्येक प्राकृत के बाद अपभ्रंश की स्थिति आनी चाहिए। पहली स्थिति में अपभ्रंश एक भाषा होगी जबकि दूसरी स्थिति में सभी प्राकृतों के बाद एक-एक अपभ्रंश होगी। सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों ने स्पष्ट माना है कि अपभ्रंश एक भाषा नहीं, भाषिक विकास की केवल एक स्थिति है और छठी से ग्यारहवीं शती तक प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था देखी जा सकती है। दूसरा मत यह है कि अपभ्रंश हिन्दी प्रदेश के उत्तर-पश्चिम भूभाग की भाषा थी। समकालीन भाषाविज्ञान मानता है कि प्रारम्भ में अपभ्रंश का विकास उत्तर-पश्चिमी भूभाग में ही हुआ होगा किंतु राजभाषा और साहित्यिक भाषा बनने के बाद इसका प्रभाव पूरे हिन्दी क्षेत्र पर पड़ा होगा। इस प्रक्रिया में अपनी निजी परम्परा तथा इस बाहरी प्रभाव से मिलकर प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था पैदा हुई होगी। इस मत के भी कई अपवाद हो सकते हैं किंतु आमतौर पर इस मत को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है।

3.2 अपभ्रंश की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. ध्वनि संरचना

(क) अपभ्रंश में **प्रयुक्त होने वाले स्वर** इस प्रकार हैं–

ह्रस्व स्वर – अ, इ, उ, ऍ, ओ̆

दीर्घ स्वर – आ, ई, ऊ, ए, ओ

ऐ और औ नहीं मिलते क्योंकि पालि में ही वे ए और ओ हो गये थे।

(ख) **ऋ का प्रयोग** अपभ्रंश में नहीं था, उसका उच्चारण सामान्य 'रि' की तरह हो गया था। तत्सम शब्दों में इसका प्रयोग चलता रहा था किंतु सामान्य शब्दों में इसका रूपान्तर अ, इ, उ और ए के रूप में होने लगा था।

अध्याय
4

अवहट्ट

अवहट्ट शब्द संस्कृत शब्द 'अपभ्रष्ट' का तद्भव रूप है। इस संबंध में एक समस्या यह है कि अपभ्रंश और अवहट्ट दोनों शब्द समानार्थी हैं क्योंकि दोनों ही 'भ्रष्ट भाषा' को व्यक्त करते हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या अवहट्ट अपभ्रंश से अलग एक स्वतंत्र भाषा है? यह समस्या इसलिए और भी जटिल हो जाती है क्योंकि उस काल के जितने भी कवियों और विद्वानों ने तत्कालीन भाषाओं के नाम गिनाए हैं, उन्होंने या तो अपभ्रंश का नाम लिया है या अवहट्ट का; किसी ने भी इन दोनों का नाम एक साथ नहीं लिखा। इससे यह संभावना प्रतीत होने लगी कि ये दोनों नाम एक ही भाषा के हैं, जिनमें से कहीं किसी एक का प्रयोग होता है और कहीं दूसरे का।

आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसंधानों से अब यह साबित हो चुका है कि अवहट्ट केवल एक भाषिक शैली नहीं बल्कि एक स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा का काल लगभग नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच स्वीकार किया गया है, यद्यपि साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से यह भाषा चौदहवीं शताब्दी तक दिखाई देती है। संदेशरासक तथा कीर्तिलता इस भाषा से संबंधित दो प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'वर्ण रत्नाकर' और 'प्राकृत पैंगलम' के कुछ अंश, 'बाहुबलि रास' आदि भी इसके स्त्रोतों के रूप में स्वीकार किए जाने वाले ग्रंथ हैं। कीर्तिलता में तो विद्यापति ने स्पष्टत: संस्कृत की तुलना में अवहट्ट को वरीयता देने की बात कही है-

"सक्कय बाणी बुहजण भावइ।
पाउअं रस को मम्म नपावइ।
देसिल बअणा सभ जण मिट्ठा।
तं तै सण जंपऔ अवहट्ठा।।"

1. ध्वनि संरचना

(क) अवहट्ट में प्रयुक्त होने वाले **स्वर** निम्नलिखित हैं-

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओ ॅ दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ औ

स्पष्ट है कि अपभ्रंश के सभी स्वरों के अतिरिक्त अवहट्ट में दो अतिरिक्त स्वर मिलते हैं- **'ऐ'** और **'औ'**। संस्कृत में ये दोनों स्वर संध्यक्षर के रूप में थे, तथा इनका उच्चारण 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में होता था। अवहट्ट में ये पहली बार सरल स्वर बनकर उभरे, जैसे- बैल, चौड़ा।

(ख) संस्कृत के शब्दों में **'ऋ' का प्रयोग** बना हुआ था किंतु तद्भव शब्दों मे 'ऋ' के स्थान पर 'अ', 'इ', 'ए' और 'उ' का प्रयोग तेजी से बढ़ने लगा था। यह प्रवृत्ति शुरु तो अपभ्रंश में ही हो गई थी, अवहट्ट में आकर और बढ़ने लगी। उदाहरण के लिए-

पृच्छ > पुच्छ हृदय > हिय

(ग) **अनुनासिकता** के संबंध में अपभ्रंश में तीन प्रवृत्तियाँ दिखती थीं। अवहट्ट में उनमें से एक प्रवृत्ति **'अकारण अनुनासिकता'** बनी हुई है। उदाहरण के लिए-

द्यूत > जूँआ निद्रा > निंद ग्रीवा > गींव

(घ) अवहट्ट की ध्वनि संरचना में एक खास प्रक्रिया दिखती है जिसे **'क्षतिपूरक दीर्घीकरण'** कहते हैं। संयुक्त व्यंजनों को सरल करने के लिए अपभ्रंश में दोनों व्यंजनों में से एक के द्वित्वीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, उसी का अगला चरण 'क्षतिपूरक दीर्घीकरण' है। द्वित्वीकरण की प्रक्रिया में संयुक्त व्यंजनों की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति के

अध्याय
5

पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी

पुरानी हिन्दी अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। विभिन्न विद्वानों में इसके स्वरूप को लेकर मतभेद की स्थिति है। इस भाषा का काल लगभग तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी का है जब पहली बार हिन्दी तथा उसकी बोलियाँ स्वतंत्र रूप से प्रकट होने लगी थीं। इस भाषिक स्थिति को **चंद्रधर शर्मा गुलेरी** ने **'पुरानी हिन्दी'** नाम दिया है और उन्हीं के द्वारा किया गया यह नामकरण आज तक प्रचलित है। इस भाषा को अन्य विद्वानों ने अन्य नामों से व्यक्त किया है, जैसे **आचार्य द्विवेदी** इसे **'उत्तरकालीन अपभ्रंश'** कहते हैं, **पंडित वासुदेवशरण अग्रवाल** इसे **'उदीयमान हिन्दी'** कहते हैं, तो **डॉ. शिवप्रसाद सिंह** इसे **'परवर्ती संक्रातिकालीन अपभ्रंश'** नाम देते हैं।

अध्ययन के स्रोत

आरंभिक हिन्दी के प्रामाणिक स्रोत कौन से हैं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। विद्वानों ने कई ऐसे स्रोत बताये हैं जिनमें सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाएँ, जैन कवियों पुष्पदंत तथा स्वयंभू की रचनाएँ, विद्यापति के कुछ पद, मुल्ला दाउद की चंदायन, अमीर खुसरो के कुछ छंद तथा रोडा की 'राउलबेलि' आदि प्रमुख स्रोत माने गए हैं। प्रायः विद्वानों में इस बात पर सहमति है कि रोडा कृत 'राउलबेलि' इस भाषा का मूल स्रोत है जबकि शेष रचनाएँ कुछ अपवादों के साथ पुरानी या आरंभिक हिन्दी में शामिल हो सकती हैं।

1. ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

(क) आरंभिक हिन्दी में **निम्नलिखित स्वर** मिलते हैं-

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ऑ

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

ऐ, औ का विकास अवहट्ट में हो गया था, पर अब ये ध्वनियाँ प्रयोग में और व्यापक हो गईं, जैसे-

मउर > मौर चखइ > चखै

(ख) सभी शब्द **स्वरांत** होने लगे। संस्कृत के व्यंजनांत शब्दों की परंपरा का ह्रास पालि-प्राकृत से ही आरंभ हो गया था, यहाँ आकर तो वह परंपरा लगभग लुप्त ही हो गई।

(ग) **ऋ** के स्थान पर अ, इ, उ, रि आदि ध्वनियाँ पहले से ही विकसित हो रही थीं। अब इनके बहुत से उदाहरण दिखाई देने लगे, जैसे-

वृद्ध > बुड्ढो मृत्यु > मीचु अमृत > अमिय

(घ) कुछ शब्दों में **स्वरों का ह्रस्वीकरण** हो गया, जैसे-

दीपावली > दिवारी आनंद > अनंद

(ङ) कुछ शब्दों में **स्वरों का दीर्घीकरण** होने लगा, जैसे-

मनुष्य > मानुख चित्र > चीत मित्र > मीत

(च) कई शब्दों में **स्वर-परिवर्तन** की घटनाएँ दिखाई देती हैं, जैसे-

दिवस > देवस नूपुर > नेउर शय्या > सेज

(छ) आमतौर पर शब्द **उकारांत** होने लगे। इसीलिए पुरानी हिन्दी को प्रायः **उकारबहुला भाषा** माना गया है, जैसे-

पापु, लेहु, कछु

(ज) कहीं-कहीं **अनुनासिकीकरण** के उदाहरण दिखाई देते हैं-

छाया > छाँह नग्न > नंग

अध्याय
6

खड़ी बोली

6.1 खड़ी बोली का नामकरण

जिस बोली को वर्तमान काल में खड़ी बोली कहा जाता है, उसका असली नाम कौरवी या देहलवी माना जाता है। यह बोली मूलत: कुरू प्रदेश की बोली है जिसके अन्तर्गत दिल्ली, आगरा, मेरठ, पानीपत, अम्बाला आदि के बीच का क्षेत्र शामिल है। यह भाषा पुरानी हिन्दी के बाद से ही इस पूरे क्षेत्र की जनबोली रही है। चूँकि बाहरी देशों से आये आक्रमणकारियों का संबंध मूलत: इसी प्रदेश से रहा, अत: धीरे-धीरे व्यावहारिक कारणों से इस बोली को समझना उनके लिए आवश्यक होता गया। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद स्वाभाविक रूप से यह बोली व्यापक होती गयी तथा इस पर कुछ फारसी प्रभाव भी पड़ने लगे। इसी बोली की अलग-अलग शैलियों को हिन्दुई, हिन्दुस्तानी, रेख्ता, उर्दू तथा दक्खिनी हिन्दी के नाम से जाना गया। ये सारी शैलियाँ मूलत: कौरवी के ढाँचे पर ही आधारित हैं, इनमें अन्तर मात्र शब्दों के अनुपात का है।

इसी कौरवी बोली को संभवत: उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में पहली बार खड़ी बोली नाम से अभिहित किया गया। खड़ी बोली में खड़ी शब्द के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों में पर्याप्त विवाद की स्थिति है। विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों के प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

(क) **डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा** का मानना है कि खड़ी शब्द कठोरता का द्योतक है। इसका प्रयोग इसलिए करना पड़ा कि ब्रजभाषा की कोमल प्रकृति से खड़ी बोली का अन्तर स्पष्टत: दिखाया जा सके।

(ख) **गार्सा द तासी** तथा **डॉ. चंद्रबली पाण्डेय** का मानना है कि खड़ी का संबंध खरी या शुद्ध से है। उनके अनुसार यह नाम इसलिए देना पड़ा कि इसे अरबी-फारसी से प्रभावित रेख्ता या उर्दू शैली से अलग रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

(ग) **टी ग्राहम बेली** ने स्पष्ट किया कि खड़ी शब्द अंग्रेजी के स्टैण्डिंग (Standing) शब्द का अनुवाद है। अंग्रेजी में इसका अर्थ होता है मानक तथा परिष्कृत भाषा (Standard language)।

(घ) **सुनीति कुमार चटर्जी** का मानना है कि इस बोली को खड़ी बोली इसलिए कहना पड़ा कि यह अकारान्त या आकारान्त बोली है जबकि ब्रज, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी जैसी पश्चिमी उपभाषा की अन्य बोलियाँ प्राय: ओकारान्त या इकारान्त हैं। अत: खड़ी पाई के अधिक प्रयोग के ही कारण यह 'खड़ी बोली' कहलाई।

इन सभी मतों में से यद्यपि किसी एक मत को पूर्णत: स्वीकार करना सम्भव नहीं है तथापि ऐसा लगता है कि खड़ी शब्द का संबंध खरी से हो सकता है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि र का ड़ के रूप में उच्चरित होना इस बोली के अपने स्वभाव के अनुकूल है तथा दूसरा यह कि हिन्दी की प्राय: सभी पूर्ववर्ती भाषाओं का नामकरण किसी न किसी गुणवाचक विशेषण के रूप में हुआ है। जिस तरह 'संस्कृत' का अर्थ 'संस्कारित भाषा' से है, 'पालि' का अर्थ 'पंक्तिबद्ध भाषा' से है, 'प्राकृत' का अर्थ 'जनभाषा' से है, 'अपभ्रंश' का अर्थ 'भ्रष्ट या संस्कारहीन भाषा' से है, उसी तरह खड़ी बोली नामकरण भी किसी गुण पर आधारित होना चाहिए। यह संयोग नहीं है कि लल्लू जी लाल की रचना 'प्रेमसागर' में, जिसमें पहली बार खड़ी बोली शब्द का प्रयोग हुआ है, इसका अर्थ "Pure Hindi" किया गया है।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली नामकरण का संबंध बोली के खरेपन से है। यह बोली जो कौरवी के नाम से आरंभ से प्रचलित थी, 1801 ईस्वी में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ ही खड़ी बोली के नाम से प्रसिद्ध होने लगी।

6.2 19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास

वर्तमान समय में जिसे हम मानक हिन्दी के रूप में जानते हैं वह वस्तुत: हिन्दी की एक बोली खड़ी बोली का ही कुछ परिवर्तित रूप है। इस बोली के संबंध में प्राय: यह भ्रम रहा है कि इसका साहित्यिक भाषा के रूप में विकास अवधी

अध्याय
7

भाषा, परिवार व उसका वर्गीकरण

7.1 भाषा और बोली में अंतर

वास्तविक रूप में ऐसी कोई भी निश्चयात्मक कसौटी नहीं है जिसके आधार पर भाषा और बोली में अंतर बताया जा सके। कुछ विद्वानों ने यहाँ तक कहा है कि भाषा और बोली का अंतर मूल रूप से 'भाषावैज्ञानिक' नहीं, बल्कि 'समाजभाषावैज्ञानिक' (Sociolinguistic) है। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषा और बोली के अंतर वस्तुत: न तो शाब्दिक स्तर पर हैं, और न ही व्याकरणिक स्तर पर, इनका मूल अंतर तो सामाजिक स्थितियों का है। जब कोई बोली कुछ विशेष सामाजिक या राजनीतिक कारणों से अपनी अन्य सहयोगी बोलियों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लेती है, विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क सूत्र का दायित्व निभाने लगती है, साहित्य और शासन की मान्य भाषा हो जाती है तो वही बोली 'भाषा' कहलाने लगती है। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि कोई बोली कुछ समय तक भाषा के पद पर रहने के बाद अपनी ही किसी सहायक बोली के अधीन हो जाए। उदाहरण के लिए मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा भाषा के रूप में प्रचलित रहीं किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली के विकास के बाद वे बोली के स्तर पर आ गईं। इसका कारण भी मूलत: उन स्थितियों में था जिनके संयोग के कारण खड़ी बोली को मानक भाषा बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

यद्यपि भाषा और बोली के अंतर मूलत: सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के हैं, तब भी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक हो जाता है कि भाषा और बोली का यथासंभव निश्चित स्वरूप तय किया जाए। इस दृष्टि से भाषा और बोली में निम्नलिखित अंतर माने जा सकते हैं-

(क) भाषा और बोली का सबसे व्यावहारिक अंतर उनकी **बोधगम्यता** का है। यदि दो लोग अपने-अपने क्षेत्रों की बोली बोलें और एक-दूसरे की बात को वे पूरा या अधूरा समझ सकें तो मानना होगा कि वे एक ही भाषा की दो बोलियों का प्रयोग कर रहे हैं। इसके विपरीत यदि वे अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग करेंगे तो प्राय: एक-दूसरे की बात नहीं समझ सकेंगे।

(ख) भाषा का **भौगोलिक क्षेत्र** प्राय: विस्तृत होता है जबकि बोली का सीमित। इसका मूल कारण यह है कि आमतौर पर बोली केवल अपने अंचल में प्रयुक्त होती है, जबकि भाषा अपने अंचल विशेष के साथ-साथ विभिन्न अंचलों के बीच संपर्क सेतु का काम भी करती है।

(ग) भाषा **भाषिक विकास** की दृष्टि से बोली की तुलना में अधिक विकसित होती है। मानकता तथा व्यापकता प्राप्त करने के कारण भाषा का विकास तेजी से होने लगता है। वह नए-नए भौगोलिक तथा वैचारिक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगती है और इस प्रकार विकास का उच्च स्तर प्राप्त करती है। इसके विपरीत बोली भाषिक विकास की दृष्टि से प्रारंभिक अवस्था में होती है जिसका मूल संबंध केवल जन प्रयोग से है।

(घ) भाषा का प्राय: एक **निश्चित व्याकरण** होता है जबकि बोली का व्याकरण निश्चित नहीं होता। इस कारण प्राय: ऐसा देखने में आता है कि भाषा के संबंध में शुद्धता का ध्यान रखा जाता है जबकि बोली में शुद्धता या अशुद्धता की चिंता नहीं की जाती।

(ङ) भाषा आमतौर पर अपने अंचल तथा उससे बाहर भी प्राय: **निश्चित और मानक रूप** में मिलती है जबकि बोली अपने अंचल के भीतर भी अलग-अलग वर्ग तथा क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त होती है।

(च) भाषा की प्राय: एक **निश्चित लिपि** होती है और इस कारण उसका प्रयोग लिखित भाषा तथा मौखिक भाषा दोनों रूपों में होता है। इसके विपरीत बोली आमतौर पर मौखिक रूप में ही प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा और बोली में एक बड़ा अंतर यह भी है कि भाषा को **शासकीय मान्यता** प्राप्त होती है जबकि बोली को नहीं। कभी-कभी तो बोली के भाषा बनने का एकमात्र कारण भी शासकीय मान्यता की प्राप्ति होता है। उदाहरण के लिए, केवल शासकीय आदेश से उत्तरी चीन की एक बोली मण्डारिन पूरे चीन की भाषा बन गई थी।

अध्याय
8

देवनागरी लिपि

8.1 'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व

'लिपि' शब्द का अर्थ है - 'लिखावट'। हम 'भाषा' के रूप में जिन ध्वनियों का उच्चारण एवं शब्दों-वाक्यों आदि में प्रयोग करते हैं, वे श्रोताओं के कानों तक पहुँचने के बाद अस्तित्वहीन हो जाती हैं। उनकी सत्ता केवल 'श्रव्य' होने तक सीमित है। भाषा की उन्हीं ध्वनियों को 'दृश्य' रूप में सम्प्रेषण का माध्यम बनाने के लिए हम उन्हें कुछ विशेष 'आकृतियों' में - रेखाओं या चित्राकृतियों द्वारा प्रस्तुत करते हैं, तब वही भाषा 'लिपि' का रूप धारण कर लेती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि "भाषा की सभी ध्वनियों के लिए निर्धारित प्रतीक-चिह्नों का सामूहिक नाम लिपि है।"

लिपि भाषा की हर एक व्यक्त ध्वनि को एक सुनिश्चित आकृति के रूप में प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार 'लिपि' भाषा का लिखित पर्याय ही है।

8.2 भाषा व लिपि का अंतःसंबंध एवं अन्तर

'भाषा' व 'लिपि' दोनों में गहरा संबंध है। 'भाषा' और 'लिपि' दोनों में ध्वनि-संकेत प्रयोग में लाये जाते हैं। दोनों का मूलभूत आधार मानव-मुख से उच्चरित ध्वनियाँ हैं। इन दोनों में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं-

(i) भाषा में ध्वनियाँ 'श्रव्य' रूप में व्यक्त होती हैं, जबकि लिपि में वही ध्वनियाँ 'दृश्य' रूप ले लेती हैं। भाषा 'मौखिक' रहती है और 'लिपि' लिखित।

(ii) भाषा का क्षेत्र सीमित है और लिपि का विस्तृत। भाषा समय और स्थान के दायरे में बंधी रहती है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास या कबीर-सूर-तुलसी ने जो कुछ गा-गाकर सुनाया, उसे केवल उनके समय में, उनके सामने उपस्थित लोग ही सुन पाये - जबकि 'लिपि' के द्वारा हम आज, हज़ारों वर्ष बाद भी, उनके काव्य का रसास्वादन कर रहे हैं। 'लिपि' समय और स्थान की सीमाओं को लांघकर हर युग में, हर समय में, हर स्थान पर पहुँच सकती है।

(iii) एक अन्य दृष्टि से भाषा लिपि की तुलना में अधिक व्यापक है। लिपि का संबंध केवल साक्षर जनता से ही बन पाता है जबकि भाषा का प्रयोग हर शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति समान रूप से कर सकता है। भारत जैसे देशों में, जहाँ लगभग आधी जनता पढ़ना-लिखना नहीं जानती, भाषा का महत्त्व अपने आप बढ़ जाता है।

(iv) 'लिपि' ही किसी 'भाषा' को उसके पूर्ण शुद्ध, मूल, वास्तविक रूप में सुरक्षित रखती है। सहस्रों वर्ष पुराना वैदिक, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य आज भी यदि अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध है तो केवल 'लिपि' के कारण। विश्व भर में ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, प्रौद्योगिकी-तकनीक, शिक्षा, प्रशासन, न्याय-विधि, राजनीति, समाज, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, चिकित्सा आदि अनेकानेक विषयों की सामग्री 'लिपि' के माध्यम से उपलब्ध है। आज 'टंकण' और 'मुद्रण' की जो कला अधिकाधिक विकसित होकर हर समाज और देश के जीवन का एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग बनी हुई है, उसका मूल आधार भी 'लिपि' ही है। '

(v) लिपि का मूल आधार है - भाषा। वास्तव में, भाषा नींव है तो लिपि उसी आधार पर स्थापित भवन।

इस प्रकार, भाषा और लिपि में समानता और भिन्नता के विविध आयाम होते हुए भी दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध स्पष्ट है। लिपि अपने अस्तित्व हेतु भाषा पर निर्भर है, जबकि भाषा अपने संरक्षण व प्रसार हेतु लिपि पर निर्भर है।

अध्याय
9

मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना

किसी भाषा में निहित व्यवस्था उसके व्याकरण पर निर्भर होती है। व्याकरण का अध्ययन चार भागों में बाँटकर किया जा सकता है–

1. पद संरचना 2. कारक व्यवस्था 3. विकारोत्पादक तत्त्व 4. वाक्य संरचना

हम क्रमशः इन चारों भागों का अध्ययन करेंगे।

9.1 हिन्दी की पद संरचना

पद संरचना पर आरंभिक चर्चा शब्द संपदा के अंतर्गत की जा चुकी है। शब्द और पद प्रायः समानार्थक शब्द हैं। इनमें अंतर सिर्फ यह है कि व्याकरण की व्यवस्था से युक्त होने के बाद शब्द पद कहलाते हैं।

पहले बताया जा चुका है कि हिन्दी के पद दो प्रकार के हैं- विकारी तथा अविकारी। विकारी पदों में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया शामिल हैं जबकि अविकारी पदों में क्रियाविशेषण, योजक या समुच्चयबोधक, संबंधबोधक तथा विस्मयादिबोधक पद शामिल हैं। अविकारी पदों के संबंध में जो चर्चा पहले हो चुकी है, वह पर्याप्त है। विकारी पदों के संबंध में यहाँ विस्तृत चर्चा की जा रही है।

9.2 हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था

परिचय

संज्ञा वह पद है जो किसी व्यक्ति, वस्तु, विचार, भाव, द्रव्य, समूह या जाति के नाम को व्यक्त करता है। वाक्य निर्माण से पूर्व संज्ञा पद **प्रातिपदिक** कहलाता है किंतु कारक के अनुसार विभक्ति या परसर्ग से जुड़कर यही प्रातिपदिक **'संज्ञापद'** बन जाता है।

संज्ञा के भेद

हिन्दी में संज्ञाओं को प्रायः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- 'व्यक्तिवाचक संज्ञा', 'जातिवाचक संज्ञा' व 'भाववाचक संज्ञा'। कुछ विद्वान इन तीन के अतिरिक्त दो और वर्गों- 'द्रव्यवाचक संज्ञा' व 'समूहवाचक संज्ञा' को भी स्वीकार करते हैं। अब यह मान लिया गया है कि ये दोनों वर्ग संज्ञा के स्वतंत्र भेद न होकर जातिवाचक संज्ञा के ही उपभेद हैं। संज्ञा के भेदों का परिचय इस प्रकार है –

(क) व्यक्तिवाचक संज्ञाः किसी व्यक्ति, स्थान, प्राणी या वस्तु विशेष का नाम बताने वाला पद व्यक्तिवाचक संज्ञा कहलाता है। उदाहरण के लिये – राम, श्याम, सीता, दिल्ली, कानपुर इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं।

(ख) जातिवाचक संज्ञाः जब कोई पद किसी वर्ग के नाम को व्यक्त करता है तो जातिवाचक संज्ञा कहलाता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी न किसी जातिवाचक वर्ग की सदस्य होती है। उदाहरण के लिये राम, श्याम जैसी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ 'मनुष्य' जातिवाचक संज्ञा की सदस्य हैं।

जातिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत दो उपभेदों की चर्चा भी की जा सकती है–

(अ) समूहवाचक संज्ञाः ये वे पद हैं जो किसी व्यक्ति, प्राणी या वस्तुओं के समूह को व्यक्त करते हैं। इन्हें समूह होने के कारण व्यक्तिवाचक नहीं मान सकते व विशिष्ट होने के कारण जातिवाचक नहीं मान सकते। उदाहरण के लिये *"सेना आगे बढ़ रही है"* वाक्य में 'सेना' समूहवाचक संज्ञा है।

(आ) द्रव्यवाचक संज्ञा – यदि कोई संज्ञा किसी पदार्थ का बोध कराती हो तो उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। उदाहरण के लिये ''पानी भर गया है'' में पानी।

अध्याय
10

राष्ट्रभाषा हिन्दी

10.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का प्रश्न मूलत: इस बात पर टिका है कि हम किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने के लिए कौन सी कसौटियाँ स्वीकारते हैं। विभिन्न भाषाविदों के विचारों को संश्लेषण करें तो किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने की निम्नलिखित कसौटियाँ मानी जा सकती हैं-

(क) वह भाषा देश के सभी या अधिकतम व्यक्तियों द्वारा बोली जा सकती हो।

(ख) उसे बोलने वाले देश के किसी एक हिस्से में नहीं बल्कि विभिन्न हिस्सों में हों ताकि वह भाषा पूरे देश में सम्पर्क सूत्र स्थापित करने में सक्षम हो सके।

(ग) वह भाषा राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को धारण करने में सक्षम हो अर्थात् देश के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों की अभिव्यक्ति उसमें हो पाती हो।

(घ) उसका शब्द भंडार इतना व्यापक हो कि देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित शब्दावली उसमें शामिल हो सके। उसमें यह प्रवृत्ति भी होनी चाहिए कि देश की भाषाओं के अन्य शब्दों को वह सहजतापूर्वक शामिल करे, न कि उनसे परहेज करे।

(ङ) उस भाषा का व्याकरण सरल होना चाहिए ताकि देश के अन्य हिस्सों के निवासी यदि उसे सीखना चाहें तो सीखने की प्रक्रिया कठिन न हो।

(च) उसकी ध्वनि संरचना व्यापक तथा लचीली होनी चाहिए। यदि अन्य भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ उसमें प्रयुक्त न होती हों तो उन्हें स्वीकारने की क्षमता उसमें होनी चाहिए।

(छ) उसकी लिपि भी राष्ट्रीय लिपि होनी चाहिए अर्थात् ऐसी लिपि जिसमें देश की सभी भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले ध्वनि संकेत लिखे जा सकते हों।

(ज) उस भाषा में साहित्य की रचना व्यापक तौर पर हुई हो तथा साहित्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में रचा गया हो।

(झ) उस भाषा ने राष्ट्र के प्रमुख आंदोलनों में सक्रिय सहभागिता की हो अर्थात् सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई हो।

10.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क

अब प्रश्न है कि क्या हिन्दी इस कसौटियों पर खरी उतरती है? ध्यानपूर्वक देखें तो प्राय: सभी कसौटियों पर हिन्दी की स्थिति मज़बूत है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

(क) सबसे पहला तर्क लोकतांत्रिक तर्क है। हिन्दी भारत में सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। यह दस राज्यों में प्रथम भाषा है जो लगभग 42% जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ ऐसे राज्य हैं जहाँ अन्य आर्य भाषाएँ प्रचलित हैं जैसे बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात इत्यादि। इन राज्यों की भाषाएँ हिन्दी की तरह संस्कृत से ही व्युत्पन्न हुई हैं इसलिए इन राज्यों के निवासी हिन्दी समझने में समस्या महसूस नहीं करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भारत की जनसंख्या में लगभग 30% है। इन 70-72% व्यक्तियों के अतिरिक्त शेष भारत में भी टूटी-फूटी हिन्दी बोली और समझी जाती है। उदाहरण के लिए कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों में हिन्दी कम से कम कामचलाऊ भाषा के तौर पर सहजता से प्रयुक्त होती है। भारत की कोई भी अन्य भाषा इस दृष्टि से हिन्दी से काफी पीछे है। बांग्ला और तेलुगू के प्रयोक्ताओं की संख्या हिन्दी के तुरंत बाद सर्वाधिक है, पर दोनों में से किसी के प्रयोक्ता (प्रथम भाषा के तौर पर) भारत की जनसंख्या में 10% भी नहीं हैं। इनका क्षेत्रगत विस्तार भी सीमित ही है। स्पष्ट है कि संख्या और क्षेत्रगत व्यापकता दोनों दृष्टियों से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल सकता है।

अध्याय
11

राजभाषा हिन्दी

11.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के भाग 5,6 और 17 में राजभाषा-संबंधी उपबंध हैं। भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। इस भाग में चार अध्याय हैं जो क्रमशः संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाओं, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों आदि की भाषा तथा विशेष निर्देशों से संबंधित हैं। ये चारों अध्याय अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत समाहित हैं। इनके अतिरिक्त, अनुच्छेद 120 तथा 210 में संसद एवं विधानमंडलों की भाषा के संबध में विवरण दिया गया है। राजभाषा संबंधी प्रावधान इस प्रकार हैं-

(क) संविधान के **अनुच्छेद 120 (1)** में कहा गया है- "संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है- *"यदि कोई व्यक्ति हिन्दी में या अंग्रेजी में विचार प्रकट करने में असमर्थ है तो लोकसभा का अध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति उसे अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।"* इसी प्रकार, अनुच्छेद 120 (2) में उपबन्ध है कि *"जब तक संसद विधि द्वारा कोई उपबन्ध न करे, तब तक संविधान के आरम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 'या अंग्रेज़ी में' वाला अंश नहीं रहेगा।"* (अर्थात् 26 जनवरी, 1965 से संसद का कार्य केवल हिन्दी में होगा।)

(ख) संविधान के **अनुच्छेद 210** में कहा गया है - राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेज़ी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है कि विधानसभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद का सभापति ऐसे किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में भी विचार प्रकट नहीं कर सकता।

(ग) संविधान के **अनुच्छेद 343** में कहा गया है- *"संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।"* इसके अतिरिक्त *"संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।"* इसी अनुच्छेद में यह भी संकेत किया गया है कि शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्षों तक होता रहेगा।

(घ) संविधान के **अनुच्छेद 344** के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि संविधान के आरंभ के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो हिन्दी के प्रयोग के विस्तार पर सुझाव देगा, जैसे-किन कार्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग किया जा सकता है, न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग कैसे बढ़ाया जा सकता है, अंग्रेज़ी का प्रयोग कहाँ व किस प्रकार सीमित किया जा सकता है आदि। इसी प्रकार का आयोग संविधान के आरंभ से 10 वर्षों के बाद भी गठित किया जाएगा। ये आयोग भारत की उन्नति की प्रक्रिया तथा अहिन्दी भाषी वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए अनुशंसा करेंगे। आयोग की सिफारिशों पर संसद की एक विशेष समिति राष्ट्रपति को राय देगी। राष्ट्रपति पूरी रिपोर्ट या उसके कुछ अंशों को लागू करने के लिए निर्देश जारी कर सकेगा।

(ङ) **अनुच्छेद 345** के अनुसार किसी राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली या किन्हीं अन्य भाषाओं को या हिन्दी को शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा। यदि किसी राज्य का विधानमण्डल ऐसा नहीं कर पाएगा तो अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग यथावत किया जाता रहेगा।

(च) **अनुच्छेद 346** के अनुसार संघ द्वारा निर्धारित भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ की सरकार के बीच पत्र आदि की राजभाषा होगी। यदि दो या अधिक राज्य परस्पर हिन्दी भाषा को स्वीकार करना चाहें तो उसका प्रयोग किया जा सकेगा।

(छ) **अनुछेद 347** के अनुसार यदि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता हो कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को उस राज्य में (दूसरी भाषा के रूप में) मान्यता दी जाए और इसके लिए लोकप्रिय मांग की जाए, तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अध्याय
12

प्रयोजनमूलक हिन्दी

12.1 प्रस्तावना

विश्व की समस्त प्रगत भाषाओं के पता चलता है कि भाषा के तीन प्रमुख रूपोंहबोलचाल, साहित्यिक तथा प्रयोजनमूलक की तुलना में उसके बोलचाल संबंधी तथा साहित्यिक रूपों की अपेक्षा प्रयोजनमूलक रूप के कारण भाषा में अधिक गत्यात्मकता आती है जो उसे चिरंजीवी रखने के लिये अहम् भूमिका अदा करती है। आज साहित्य, संस्कृत, प्राकृत, मगधी तथा पाली का भी उपलब्ध है परंतु प्रयोजनमूलकता का तत्त्व नदारद रहने से वे लगभग मृतप्राय मानी जाती है। आधुनिक हिन्दी भाषा में उसकी प्रयोजन-मूलकता के कारण ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है और इसी के कारण उसका भाषागत विकास भी चरमोत्कर्ष तक पहुँच रहा है। प्रयोजनमूलक हिन्दी ज्ञान-विज्ञान तथा राजकाज के सरकारी कार्यों में वैसे तो खड़ी बोली के माध्यम से अधिकाधिक प्रयुक्त की जा रही है फिर भी हिन्दुस्तानी की संभावना बराबर बनी रही है। इसी के साथ-साथ संपर्क भाषा के रूप में वह देश के लगभग पच्चीस राज्यों तथा अनेक संघ शासित प्रदेशों में अहम् भूमिका निभा रही है। सरकार द्वारा आविर्भूत 'द्विभाषा सूत्र' के कारण उसके प्रचार-प्रसार में वृद्धि होने के साथ वह अनेक भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क तथा एकता की कड़ी के रूप में भी कार्यरत है।

विश्व में मानव सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान की उन्नत धरोहर को अक्षुण्ण रखने में भारतवर्ष का जो योगदान रहा है उसमें भाषिक दायित्वों के निर्वाहस्वरूप भारतीय भाषाओं की समन्वयक हिन्दी भाषा की अहम् भूमिका है। हिन्दी एक मात्र ऐसी भाषा है जिसने भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान तथा संस्कृति को न केवल सघन सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है, बल्कि उनकी अनुरक्षा करते हुए उन्हें गत्यात्मक भी बनाए रखा है। आंतरिक संरचना की सौन्दर्य-शीलता, भाव-भंगिमाओं की गहनता, अभिव्यक्ति की तीव्रता एवं शैलियों की बिबिधता को समेटे हिन्दी साहित्य अनेक उन्नत रूपों में प्रवाहमान है। परंतु आधुनिक युग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व प्रस्फुटन एवं फैलाव के कारण हिन्दी भाषा की उपादेयता और प्रयोजनमूलकता अनेक क्षेत्रों में स्वयं सिद्ध होने के फलस्वरूप उसके नए प्रयोग रूप भी उभरकर सामने आए हैं। जिनमें 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' सर्वोपरि माना जा सकता है।

12.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता

भारतवर्ष में समृद्धतम साहित्यिक हिन्दी की पार्श्वभूमि पर प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता वस्तृतः तब महसूस की गई जब हिन्दी राजभाषा के पद पर आसान हुई। विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तेजी से फैले प्रसार के साथ भारत में भी इस नवीनतम ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलॉजी की आंधी उमड़ पड़ी। इसके फलस्वरूप हिन्दी को नए महत्त्वपूर्ण भाषिक दायित्वों और अभिव्यक्ति के सर्वथा नवीनतम क्षेत्रों से गुजराना पड़ा। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक संदर्भ में हिन्दी के एक ऐसे रूप की तीव्र आवश्यकता पड़ी जो प्रशासन और ज्ञान विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों की अभिव्यक्त कर सक्षमता से रूपायित कर सके।

राजभाषा के पद पर आसीन होने से पूर्व हिन्दी सरकारी कामकाज तथा प्रशासन आदि की भाशा कभी नहीं रही थी। मुसलमान शासकों के शासन की भाषा उर्दू और अरबी-फारसी रही। अंग्रेजों के शासन काल वे उनके प्रशासन की भाषा अनिवार्यतः अंग्रेजी ही रही। अतः भारत की राजभाषा बनने के बाद हिन्दी को सरकारी कामकाज तथा प्रशासन के सर्वथा अनुछुए क्षेत्र से गुजरना पड़ा और तब ऐसी हिन्दी की आवश्यकता पड़ी जो पारिभाषित शब्दावली, भाषिक गठन, वस्तुनिष्ठ एकार्थता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता आदि से युक्त हो तो सरकारी कामकाज के लिये मध्यम के रूप में उसका इस्तेमाल किया जा सके।

अध्याय
13

काव्यशास्त्र

13.1 काव्य की परिभाषा

काव्य अथवा कविता या पद्य साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरत मुनि से समझा जा सकता है।

- आचार्य विश्वनाथ के अनुसार- 'रसात्मकं वाक्यं काव्यं अर्थात रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।'
- आचार्य जगन्नाथ के अनुसार- 'रमणीय अर्थ के प्रतिपादक धर्म को काव्य कहते हैं।'
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- 'जो उक्ति हृदय में कोई भाव जगा दे और उस वस्तु तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे, वह काव्य है।'
- जयशंकर प्रसाद के अनुसार- 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति काव्य है'। अत: यह कहा जा सकता है कि भाषा के माध्यम से सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति काव्य है।

काव्य का शाब्दिक अर्थ

काव्य या कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की शृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है। काव्य वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। अर्थात् वह कला जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। 'रसगंगाधर' में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दालंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ' की श्रमणीयताश कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। 'साहित्य दर्पणाकार' विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक माना गया है। उनके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है।' रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

13.2 काव्य हेतु

मनुष्य प्राय: जो भी कार्य करता है, उसके पीछे कोई न कोई हेतु छिपा होता है। हेतु का तात्पर्य यहां कारण से है। काव्य सृजन के पीछे भी कोई न कोई हेतु होता है। प्रयोजन और हेतु में अंतर होता है। हेतु बीज स्वरूप में होते है और प्रयोजन फल स्वरूप में। अर्थात काव्य निर्मिती के पीछे हेतु को ही प्रमुख तत्व के रूप में देखा जा सकता है। वे कौन से हेतु अथवा कारण हैं कि जिनकी प्रेरणा से कवि या लेखक नई सृष्टि की रचना करता है? भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने काव्यहेतु पर समग्र रूप से विवेचन किया है। जिसे हम निम्न अनुसार देख सकते है।

- **संस्कृत आचार्यों के मत:** संस्कृत में काव्य रचना अत्यंत प्राचीन काल से होने लगी थी। पर काव्य हेतु के विश्लेषण का सर्वप्रथम प्रयास आचार्य भामह का माना जाता है।

आचार्य भामह ने प्रतिभा को प्रमुख काव्य हेतु मानते हुए कहा है, कि कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही काव्य रचना कर पाता है। काव्य सृजन के लिए प्रतिभा आवश्यक है। प्रतिभा एक शक्ति स्वरूप है, जो कवि में बीज स्वरूप में विद्यमान होती है। भामह के अनुसार काव्य और शास्त्र के अनवरत अध्ययन से व्युत्पन्न शक्ति भी काव्य हेतु है। अर्थात भामह व्युत्पत्ति और अभ्यास को महत्वपूर्ण मानते है। व्युत्पत्ति का तात्पर्य लोक शास्त्र तथा काव्य का निरीक्षण से है; जिससे ज्ञान प्राप्त होता है; अनुभव, योग्यता प्राप्त होती है। गुरू का सान्निध्य प्राप्त कर काव्यरचना का अभ्यास होता है। गुरु के मार्गदर्शन और संशोधन से काव्यरचना में निखार आता है।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation